एक्जिट पोल कुछ न बोल

दर्द

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

सत्य बोलें, प्रिय बोलें पर अप्रिय सत्य न बोलें और प्रिय असत्य न बोलें। सनातन धर्म की रीति को बताने वाले मनुस्मृति के चौथे अध्याय के इस 138वें श्लोक पर कुछ मामलों में मनसा, वाचा और कर्मणा अमल करते हमारे राजनेताओं को देखना निश्चितरूप से सुखद अनुभव है। किसी भी लोकतंत्र के लिए यह गौरव के क्षण होते हैं। ओपीनियन पोल और एक्जिट पोल पर प्रतिबंध लगाने वाली राजनीतिक दलों की सर्वसम्मति से कम से कम तो यह निहितार्थ निकलते ही हैं। शायद इसके पीछे उनके लिए किसी को अप्रिय लगने वाले सत्य को न बोले जाने की अवधारणा काम करती है। लिहाजा सभी ने जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 में संशोधन करके ऐसा नियम बना दिया जिसके तहत किसी भी चुनाव में जब तक अंतिम वोट नहीं डाल दिया जाता है तब तक उसका एक्जिट पोल नहीं कराया या दिखाया जा सकता है। यही नहीं, किसी चुनाव के पहले 48 घंटे के भीतर ओपीनियन पोल पर भी पाबंदी है।

दलील

एक्जिट पोल पर लगी पाबंदी के पीछे यह तर्क दिए जाते हैं कि इससे मतदाता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकते हैं। हालांकि इसका अब तक कोई वैज्ञानिक-वैधानिक आधार नहीं है। वैसे भी संचार क्रांति के इस स्वर्णकाल में सूचनाओं के प्रचार-प्रसार में समय नहीं लग रहा है। पलक झपकते ही मानों मन की बातें भी दुनिया जान जा रही है। ऐसे में मतदाता के प्रभावित होने की बात गले नहीं उतरती। प्रभावित होना ही होगा तो वह संचार के अन्य अद्यतन माध्यमों से भी हो सकेगी। बड़ा मसला ऐसे प्रतिबंध से लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होना है।

दिक्कत

केवल यह तर्क देकर कि चुनावी सर्वेक्षणों के नतीजे भ्रामक होते हैं, उनको तैयार करने के दौरान कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती, सर्वेक्षण करने वाले पेशेवर नहीं हैं या फिर एक्जिट पोल मतदाताओं को गलत ढंग से प्रभावित करते हैं, किसी लोकतंत्र में चुनावी सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध जैसा सख्त कदम उठा लेना जनभावनाओं से खिलवाड़ से कम नहीं है। ऐसे में भारत जैसे विविधतापूर्ण लोकतंत्र में एक्जिट पोल की भूमिका की पड़ताल आज हम सबके लिए बड़ा मुद्दा है।

प्रतिबंध नहीं, हो सार्थक उपयोग

-प्रो संजय कुमार
(निदेशक, सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटीज (सीएसडीएस))

ओपीनियन पोल मतदान निर्णय को कितना प्रभावित करता है? चुनाव के समय सबसे चर्चित मसलों में से शुमार इस मुद्दे पर कुछ कयास, कुछ अनिश्चित और कुछ निश्चयात्मक जवाब मिलते हैं। इसी तरह के जवाब ओपीनियन पोल और एक्जिट पोल पर पाबंदी लगाने या नहीं लगाने के मुद्दे पर भी मिलते हैं। 2014 के आम चुनाव में भी इन प्रश्नों के केंद्रीय चर्चा में आने पर हमको हैरानी नहीं है। हमें इस पर आश्चर्य नहीं होता कि पिछले कुछ वर्षों में राजनीतिक दलों ने इस मसले पर किस तरह बार-बार अपने रुख को बदला है। एक दल जो अब ओपीनियन पोल/एक्जिट पोल पर पाबंदी लगाने की मांग कर रहा है वह कुछ वर्ष पहले इसका विरोध या तटस्थ भाव अख्तियार किए हुए था। स्पष्ट रूप से इन पर पाबंदी की मांग करने वाली सशक्त आवाजें राजनीति से प्रेरित हैं। उनके पास कोई ऐसा प्रमुख तर्क नहीं हैं जिसके आधार पर इन पर पाबंदी लगा दी जानी चाहिए। उनके पास ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं है जिसके आधार पर यह बताया जा सके कि वह मतदाताओं के निर्णय को किस तरह प्रभावित करता है।

भले ही किसी का इन पोल की सटीकता पर यकीन हो या न हो लेकिन आम जनता की इनमें रुचि जबर्दस्त होती है। इनके मतदाता के वोटिंग निर्णय को प्रभावित करने संबंधी अभी कोई ठोस प्रमाण नहीं है लेकिन कुछ संकेतक इशारा करते हैं कि आम जनता के लिए ये पोल रोमांचक होते हैं और मतदाताओं के वोटिंग निर्णय पर इनका प्रभाव बहुत सीमित होता है। भारत जैसे देश में जहां वोटरों की बड़ी आबादी निरक्षर है, अखबार पढ़ने में असमर्थ है वहां ऐसे ओपीनियन पोल का प्रकाशन बड़ी संख्या में वोटरों को किस तरह प्रभावित कर सकता है? यद्यपि यह सच है कि पिछले कुछ दशकों में मीडिया का विस्तार हुआ है और यह बड़ी आबादी तक पहुंचा है लेकिन अभी भी वोटरों की बड़ी तादाद (मुख्य रूप से गांव में रहने वाले गरीब और निरक्षर) की टीवी तक पहुंच नहीं है। यह दुखद और हैरान करने वाला है कि शहरी शिक्षित वोटर जो अपने आप को तार्किक समझता है, वह इन ओपीनियन पोल के नतीजों से प्रभावित हो जाएगा। वे लोग जो यह मानते हैं कि ओपीनियन पोल मत निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं और बैंडवेगन प्रभाव (ओपीनियन पोल में संभावित जीतने वाले को वोट देने के लिए प्रेरित होना) को सृजित करते हैं, उनको इसके विपरीत प्रभाव के नतीजों को भी स्वीकार करना चाहिए। इसके तहत ओपीनियन पोल में संभावित जीतने वाले के खिलाफ एकजुट होकर पार्टी को हराने की कोशिश करने वाले वोटरों के समूह भी होने चाहिए।

> **यह दुखद है कि जब ओपीनियन पोल को पारदर्शी और जवाबदेह बनाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए तो बहस इसको प्रतिबंध करने या नहीं करने पर हो रही है।**

मैं यद्यपि ओपीनियन पोल या एक्जिट पोल पर पाबंदी लगाने के पक्ष में नहीं हूं लेकिन साथ ही मैं इन पर तार्किक रूप से प्रतिबंध लगाने का पक्षधर हूं कि अखबारों-टीवी में इनका प्रकाशन-प्रसारण कब किया जाना चाहिए। मैं निश्चित रूप से इस पक्ष में हूं कि चुनाव के विभिन्न चरणों के बीच इनके प्रसार पर प्रतिबंध होना चाहिए। इस पर पाबंदी के बजाय मैं ओपीनियन पोल में व्यापक पारदर्शिता के पक्ष में हूं। मसलन विधि का ब्योरा जिसमें सैंपल का आकार उसकी व्यापकता और इस तरह के ओपीनियन पोल की फंडिंग के स्रोत शामिल हैं। मुझे ऐसा कारण नहीं दिखता जिसकी वजह से ओपीनियन पोल करने वालों को ऐसा करने में संकोच हो। ओपीनियन पोल करने वालों के बजाय तीसरे पक्ष द्वारा डिजाइन की गई आचार संहिता बनाने का स्वागत किया जाना चाहिए। प्रतिबंध से कोई मकसद पूरा नहीं होगा क्योंकि जो गलत तरीकों को अख्तियार करके इस तरह के कार्यों में जुटे हैं, वे इसके लिए कोई दूसरा तरीका खोज निकालेंगे।

मैं दुख के साथ सहमत हूं कि अच्छे (पद्धति के आधार पर) और बुरे पोल होते हैं, जिनमें अच्छी पद्धति का उपयोग नहीं किया जाता। यह दुखद है कि जब ओपीनियन पोल को पारदर्शी और जवाबदेह बनाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए तो बहस इसको प्रतिबंध करने या नहीं करने पर हो रही है। क्या हमने चुनावों की रिपोर्टिंग पर पाबंदी लगाई है जबकि पेड न्यूज के संबंध में गंभीर आरोप लगे हैं? क्या मैच फिक्सिंग के गंभीर आरोपों के बावजूद हमने क्रिकेट को प्रतिबंधित किया है?

ऐसे राजनीतिक दलों को भी सोचना चाहिए जो जमीनी स्तर पर काम करने के बजाय जनता का समर्थन हासिल करने के लिए ओपीनियन पोल को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करने के बारे में सोचते हैं। निश्चित है कि उनको किसी ने भरमाया है क्योंकि मेरा यकीन है कि ऐसे पोल वोटरों के मत निर्णय प्रक्रिया पर कुछ खास प्रभाव नहीं डाल पाते।

ये पोल महज वोटों के आकलन और पार्टियों एवं गठबंधन की संभावित सीटों तक ही सीमित नहीं रहने चाहिए बल्कि सुविचारित ढंग से करने पर शोध के मकसद से इनका भरपूर उपयोग किया जा सकता है। यह ऐसे प्रश्नों का विश्वसनीय जवाब दे सकते हैं कि वोटरों के लिए कौन से मुद्दे अर्थपूर्ण हैं। कौन सबसे लोकप्रिय नेता है और निश्चित वक्त बीतने के साथ उसकी लोकप्रियता में कितना परिवर्तन हुआ और राजनीतिक दलों को मिलने वाले सहयोग की प्रकृति क्या है, इत्यादि। बहुदलीय लोकतंत्र में ये ही पूछे जाने वाले वैधानिक सवाल हैं। इन सवालों का जवाब हम कहां पा सकते हैं? चुनाव आयोग के नतीजे केवल पार्टियों/प्रत्याशियों के वोट शेयर और उनकी जीत-हार के विषय में बताते हैं। ओपीनियन पोल इस तरह के प्रश्नों के जवाब को देने में हमारी मदद कर सकते हैं। ओपीनियन पोल के माध्यम से मिलने वाले जवाब सक्षम व्यक्तियों के निजी विचारों की तुलना में अधिक विश्वसनीय होंगे।

स्वरूप को तराशने की जरूरत

-डॉ गोविंद सिंह
(वरिष्ठ पत्रकार एवं उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के प्रोफेसर)

निर्वाचन आयोग ने सात अप्रैल से 12 मई तक एक्जिट पोल यानी मतदान के तत्काल बाद जनमत संग्रह के प्रसारण या प्रकाशन पर रोक लगाकर उचित ही किया। क्योंकि पिछले 3-4 चुनावों से लगातार ओपीनियन और एक्जिट पोल की विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लगते रहे हैं। वे न सिर्फ अपनी भविष्यवाणी में विफल रहे हैं, बल्कि इनकी आड़ में स्वार्थी तत्वों पर काले कारनामों को अंजाम देने के आरोप भी लगे हैं। चूंकि आरोप एकदम निराधार नहीं हैं, इसलिए वे अपने मकसद में स्वतः पराजित हो जाते हैं। आखिर ऐसा क्यों हुआ? भारत में भी जब 1980 में पहली बार ओपीनियन पोल कराए गए थे तो वे सत्य के काफी करीब आये थे। उससे पहले अनुभवी राजनेता, राजनीतिक पंडित और पत्रकार यह काम किया करते थे। वे बहुत सटीक नहीं तो सत्य के नजदीक की भविष्यवाणियां कर लिया करते थे। जनता खुद भी काफी-कुछ समझती थी। हमें याद है कि 1980 में जब मध्यावधि चुनाव हुआ था तो ज्यादातर अखबारों ने यही भविष्यवाणी की थी कि चाहे जो हो, इंदिरा गांधी पुनः सत्ता में नहीं आएंगी, लेकिन जब इंदिरा गांधी पूर्ण बहुमत से चुनाव जीत गईं तो एक अखबार ने बाकायदा पहले पेज पर संपादकीय लिख कर माफी मांगी। जबकि ओपीनियन पोल वाली पत्रिका सही साबित हुई थी।

ऐसे माहौल में ओपीनियन पोल सचमुच ताजा हवा के झोंके की तरह आए और लगा कि इससे हमारा लोकतंत्र और मजबूत होगा। 1985 और 1989 के लोकसभा चुनावों में भी वे अपने मकसद में कामयाब रहे। लेकिन जैसे ही उनकी स्वीकार्यता देशव्यापी होने लगी, उनके स्तर में गिरावट आने लगी। उनकी भविष्यवाणियां गलत साबित होने लगीं। चूंकि सेफोलोजी के धंधे में तरह-तरह के फर्जी लोग भी घुसने लगे, इसलिए उनके सैंपल और सर्वेक्षण भी फर्जी पाए जाने लगे। सर्वेक्षण करने वाले लोग अपना काम ईमानदारी से नहीं करते थे। ऐसा नहीं कि सर्वे करवाने वाली सभी संस्थाएं ऐसी ही थीं, लेकिन आननफानन फैले इस कारोबार ने अपनी पेशेवर नैतिकता खो दी। इनके नाम पर राजनीतिक दल अपने पक्ष में कृत्रिम माहौल बनाने लगे। राजनेता और राजनीतिक दल भारी धनराशि देकर अपने पक्ष में भविष्यवाणियां करवाने लगे। चूंकि एक्जिट पोल मतदान के एकदम बाद करवाए जाते हैं, इसलिए उनकी भविष्यवाणी की संभावना भी बढ़ जाती है। शुरुआती एक्जिट पोल में हुआ भी ऐसा ही। लेकिन सर्वे एजेंसियों के गैरपेशेवर व्यवहार की वजह से इनकी साख पर भी बट्टा लगने लगा।

अपने मूल स्वरुप में गैलप पोल काफी सटीक रहे हैं। अमेरिका और यूरोप के देशों में तो वे शत-प्रतिशत सटीक बैठते हैं, क्योंकि वहां का समाज समतल है। अमूमन लोग शिक्षित हैं। जीवन स्तर में हमारी तरह विविधता नहीं है। बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध हैं। संचार और जनसंचार की वजह से पूरा देश लगभग एक तरह से सोचता है और लोग भी हमारी तुलना में खुले हुए हैं। उनके मन में क्या है, साफ-साफ बताने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। सबसे बड़ी बात यह कि सर्वेक्षण को अंजाम देने वाले लोग अपना काम ईमानदारी से करते हैं। ऐसे समाज में औचक ही कुछ लोगों के विचार लेकर किया गया सर्वेक्षण एकदम सटीक बैठता है। लेकिन हमारा समाज वैसा नहीं है। हम एक निहायत ही पेचीदा समाज में रहते हैं। हमारे यहां जातियां-उपजातियां हैं, धर्म-सम्प्रदाय हैं, वर्गीय विषमताएं हैं, क्षेत्रीय असंतुलन हैं, अनगिनत विभिन्नताएं हैं। दरअसल हम दिमाग से नहीं, दिल से परिचालित होने वाले समाज हैं। फिर चूंकि हमें आजाद हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ, हम हाल ही में शिक्षित हुए हैं, इसलिए हमारा मतदाता अनेक तरह की ग्रंथियों से ग्रस्त है। सर्वे करने वालों को वह अपने मन की बात बताता ही नहीं। वह मतदान केंद्र में जाकर भी अपना मन बदल सकता है। एक ही परिवार में अलग-अलग दलों को वोट देने वाले लोग हैं तो लाठी के बल पर हांके जाने वाले समूह भी हैं और जातियों-बिरादरियों में बंटे खाप और राठ भी हैं, जो सैकड़ों गांवों में बिखरे होते हुए भी एक ही तरीके से सोचते हैं। वहां वोट डाले नहीं जाते बल्कि थोक में पड़ते हैं। इसलिए केवल अमेरिकी पैटर्न पर सर्वे करा देने से ऐसे समाज के मन की टोह लेना आसान नहीं है। फिर अमेरिकी तरीके को ही हमारी सर्वे एजेंसियां कौन-सा अपनाती हैं! वे गांव-देहात में ही नहीं पहुंच पाते, कहां तो पहाड़-वनवासी इलाके? वे गांव से शहर आये व्यक्ति से सवाल पूछ कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। बहुत सी संस्थाएं तो उतना भी नहीं करतीं। वे एक बार किए हुए सर्वेक्षण को कई-कई बार इस्तेमाल करती रहती हैं। पैसा बनाने के फेर में वे सौ लोगों के सर्वे को दस से ही करवाकर पेश कर देते हैं। बस उन्हें एक ही चीज आती है, वह है सांख्यिकी। उसी के बल पर वे आंकड़ों में हेर-फेर करते हैं। इसीलिए उनकी भविष्यवाणियां गलत साबित हो रही हैं। पिछले ही लोकसभा चुनाव के एक्जिट पोल को ले लीजिए। सारे एक्जिट पोल नतीजे तक नहीं पहुंचे। एक और मजेदार तथ्य यह भी है कि बहुत सी एजेंसियां कहती हैं कि फलां दल को इतने से इतने के बीच सीटें मिल सकती हैं। इस 'बीच' में वे 20 से 40 तक सीटें रख देती हैं। इतने अंतर के साथ भविष्यवाणी तो कोई भी कर देगा, फिर आपकी क्या जरूरत!

> **आनन-फानन फैले इस कारोबार ने पेशेवर नैतिकता खो दी। निहित स्वार्थी लोग इससे खुद के उल्लू सीधा करने लगे। पार्टियां अपने पक्ष में कृत्रिम माहौल बनाने लगीं।**

इसलिए अपनी मूल अवधारणा में गैलप पोल ठीक होते हुए भी भारत में हाल के वर्षों में उसका कार्यान्वयन ठीक नहीं हुआ। भारत जैसे विविधता भरे देश में उसे ज्यों का त्यों अपनाना भी बहुत मुश्किल है। इसलिए यह जरूरी है कि उसके स्वरुप को तराशा जाए, अपने अनुकूल बनाया जाए और तब इस्तेमाल में लाया जाए ताकि उससे हमारा लोकतंत्र मजबूत हो।

चुनावी सर्वे

चुनाव के दौरान निर्वाचकों और मतदाताओं से बातचीत कर विभिन्न राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों की जीत हार के पूर्वानुमानों के आकलन की प्रक्रिया चुनावी सर्वे कहलाती है। विभिन्न स्तरों के आधार पर किए ये सर्वेक्षण अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

एक्जिट पोल

इसका मतलब होता है कि जब मतदाता अपना वोट डालकर निकल रहा हो तब उससे पूछा जाए कि उसने किसे वोट दिया। इस आधार पर किए गए सर्वेक्षण से जो व्यापक नतीजे निकाले जाते हैं उन्हें ही एक्जिट पोल कहते हैं। ओपीनियन पोल इससे सर्वथा भिन्न होते हैं। इस सर्वे में निर्वाचकों से पूछा जाता है कि वे अपना मत किसे देने का मन बना रहे हैं। नीदरलैंड के एक समाजशास्त्री और पूर्व राजनेता मार्सेल वान डैम ने दुनिया को एक्जिट पोल से रूबरू कराया। 15 फरवरी, 1967 को पहली बार वहां के चुनावों में इस विधा का इस्तेमाल किया गया।

ओपीनियन पोल

आज चुनावी ओपिनियन पोल का जो स्वरूप हमें दिखाई देता है कभी उसका इस्तेमाल पत्रकार विभिन्न मसलों पर जनता की नब्ज टटोलने के लिए करते थे। इसकी शुरुआत का श्रेय जॉर्ज गैलप और क्लॉड रोबिंसन को जाता है। इन दोनों ने सबसे पहले अमेरिकी लोगों के बीच एकत्र सैंपल सर्वे द्वारा उनकी एक राय परिभाषित की। यह विधा इतनी लोकप्रिय हुई कि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने भी इसे अपनाने से गुरेज नहीं किया। ब्रिटेन और फ्रांस में जब इन्हें पहली बार क्रमशः 1937 और 1938 में अपनाया गया तो इनके नतीजे कमोबेश बिलकुल सटीक निकले।

भारत में चलन

इसकी शुरुआत का श्रेय इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपीनियन के मुखिया एरिक डी कोस्टा को जाता है। चुनाव के दौरान इस विधा द्वारा जनता के मिजाज को परखने वाले वे पहले व्यक्ति थे।

पोल पर प्रतिबंध

शुरुआती दिनों में ओपीनियन पोल जिस तेजी के साथ लोकप्रिय हुआ, उतनी ही तेजी से वह राजनीतिक दलों के आंखों की किरकिरी बनने लगा। लिहाजा सभी दल एक सुर में इस पर प्रतिबंध लगाने की मांग करने लगे। 1999 में चुनाव आयोग ने बाकायदा एक एक्जीक्यूटिव ऑर्डर के तहत ओपीनियन पोल और एक्जिट पोल को प्रतिबंधित कर दिया। एक समाचार पत्र ने आयोग के इस आदेश को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी। कोर्ट ने इस आदेश को निरस्त करते हुए कहा कि आयोग के पास ऐसे ऑर्डर जारी करने की शक्ति नहीं है और किसी मसले पर सर्वदलीय सर्वसम्मति उसके खिलाफ कानूनी प्रतिबंध का आधार नहीं होता है।

दोबारा प्रयास

2009 लोकसभा चुनाव से ठीक पहले एक बार फिर इसे प्रतिबंधित किए जाने की मांग जोरों से उठने लगी। लिहाजा आयोग ने कानून मंत्रालय को प्रतिबंध के संदर्भ में कानून में बदलाव के लिए तुरंत एक अध्यादेश लाए जाने संबंधी पत्र लिखा। 2009 में संप्रग सरकार ने जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 में संशोधन कर दिया। संशोधित कानून के अनुसार चुनावी प्रक्रिया के दौरान जब तक अंतिम वोट नहीं डाल दिया जाता, एक्जिट पोल नही किया जा सकता है। कोई भी पोल के नतीजों को न तो दिखा सकता है और न ही प्रकाशित कर सकता है। हालांकि तब ओपीनियन पोल पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया लेकिन प्रतिबंध की तलवार इस पर भी लटकी हुई है।

प्रतिबंध पर दलील

- ओपीनियन पोल और इस पर आधारित पूर्वानुमानों का लोगों द्वारा बड़े पैमाने पर संज्ञान लिया जाता है।
- ये सर्वेक्षण मतदाता के वोट करने की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
- चूंकि ज्यादातर पूर्वानुमान गलत साबित हुए हैं, इसलिए मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करने की यह प्रक्रिया या तो अवैध है या फिर राजनीति में सभी को समान मौके दिए जाने को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करने के चलते अवांछनीय है।

परदेश में प्रावधान: दुनिया के कई लोकतंत्र इस अहम मसले पर दोफाड़ हैं। कुछ इसे सही भी ठहराते हैं।

जहां है पूरी आजादी: बेल्जियम, डेनमार्क, जर्मनी और आयरलैंड

कुछ शर्तों के साथ छूट: चीन, दक्षिण कोरिया, मेक्सिको

मतदाता पर असर

एक्जिट पोल से मतदाता के प्रभावित होने की जिस दलील को देते हुए इसे प्रतिबंधित किया गया है, दुनिया भर के विशेषज्ञ इस पर एकमत नहीं है। कुछ लोग इस दलील को सिरे से खारिज करते हैं तो कुछ का मानना है कि अगर प्रभावित भी हों तो प्रतिबंध लगाने की हद तक नहीं जाना चाहिए। हालांकि एक्जिट पोल से मतदाता पर पड़ने वाले असर पर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और फ्रांस की सीआरईएसटी संस्था में बतौर रिसर्च फेलो कार्यरत मनसा पतनम ने एक व्यापक शोध किया। 'लर्निंग फ्रॉम एक्जिट पोल्स इन सीक्वेंशियल इलेक्शंस: इवीडेंस फ्राम ए पॉलिसी एक्सपेरीमेंट इन इंडिया' नाम से प्रकाशित 60 पेज के इस शोध पत्र में एक्जिट पोल के असर से मतदाताओं के व्यवहार में दिखे बदलाव की पड़ताल की गई है। निष्कर्ष में बताया गया है कि अंतिम घंटों के दौरान मतदान करने आए करीब 20 फीसद मतदाताओं ने वोटिंग के शुरुआती क्रम में एक्जिट पोल में बढ़त लेनी वाली पार्टियों के पक्ष में मतदान किया।

मुद्दा जनमत

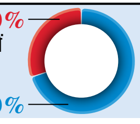

क्या एक्जिट पोल के नतीजे जाहिर होने से मतदाता प्रभावित होते हैं?

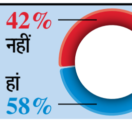

क्या चुनाव के अंतिम चरण तक एक्जिट पोल पर पाबंदी उचित है?

आपकी आवाज

एक्जिट पोल पर पाबंदी चुनाव के अंतिम चरण तक सही कदम है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में वोटर पर किसी तरह की हवा का दबाव नहीं होना चाहिए। पोल पर पाबंदी इस व्यवस्था को मजबूत करती है। **-अनुराग शर्मा**

मतदाताओं पर पोल का प्रभाव निश्चित तौर पर पड़ता है। उनके मतदान का आधार विजय की ओर अग्रसर दल की ओर हो जाता है। **-मनीषा श्रीवास्तव**

कई मतदाता आखिरी समय में अपना निर्णय बदल देते हैं, एक्जिट पोल में मतदाताओं का रुझान स्वत ही जीतने वाली पार्टी की ओर हो जाता है। **-अंकेश कुमार**

एक्जिट पोल वोटर को प्रभावित करता है। वोटर की सोच होती है कि जो जीत रहा है, उसी को वोट दे। यह गैर लोकतांत्रिक प्रक्रिया है। **-अभिषेकगुप्ता.गिद्धौर@जीमेल.कॉम**

यह सत्य नहीं कि मतदाता प्रभावित होते हैं। लेकिन इससे पार्टी के कार्यकर्ताओं के उत्साह में प्रभाव पड़ता है। **-विकासविक्रम@जीमेल.कॉम**

चुनाव कई चरणों में होता है, इसलिए मतदाताओं पर इसका व्यापक असर पड़ता है। और जिनकी बढ़त होती है, जनता का झुकाव उनकी तरफ हो जाता है। परंतु कभी-कभी इसका उल्ट भी हो जाता है। **-परवेजअंसारी.विकी@जीमेल.काम**

एक्जिट पोल की जनता के लिए कोई सार्थकता नहीं है, यह केवल मनोरंजन है। फिर भी चुनाव पूरे होने से पहले पोल के नतीजों को प्रसारित करने पर रोक लगाई जानी चाहिए। **-कुंदनचम्याल1979@जीमेल.कॉम**

भारतीय लोग प्रचार, विज्ञापन पर भरोसा करते हैं। ऐसे में रोड शो, रैलियां, टीवी प्रचार एवं जनसभाएं वोटरों को प्रभावित करने का जरिया है। एक्जिट पोल से अनिर्णय की स्थिति में वोटर पूरी तरह प्रभावित हो जाता है। **-सागरबजमी@जीमेल.कॉम**

अभिव्यक्ति की आजादी का कितना हनन!

-प्रो त्रिलोचन शास्त्री
(संस्थापक चेयरमैन एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर))

एक्जिट पोल में जब किसी पार्टी या प्रत्याशी को बढ़त मिलती दिखती है तो ऐसी सूरत में या तो वोटर चुनावी प्रक्रिया से ही दूर रहता है या फिर कुछ एक्जिट पोल नतीजों के साथ या विरोध में जाने की चाहत रखते हैं।

एक तरफ हमको संविधान के तहत अभिव्यक्ति की आजादी की गारंटी मिली हुई है। दूसरी तरफ इस तरह की पाबंदी है। इस संदर्भ में हमको दूसरे देशों के अनुभवों को देखने की भी जरूरत है। भारत में हो रहे मौजूदा चुनाव नौ चरणों में सात अप्रैल से 12 मई तक 35 दिनों में हो रहे हैं। हमें यह समीक्षा करनी होगी कि सात अप्रैल को एक्जिट पोल के निष्कर्षों को क्या अन्य क्षेत्रों तक फैलने और प्रभावित करने के लिए पर्याप्त समय होता है। राजनीतिक दल किस तरह इन नतीजों का उपयोग करते हैं? देश में दूसरा मुद्दा पेड न्यूज की समस्या से जुड़ा हुआ है। इन परिस्थितियों में क्या एक्जिट पोल नतीजों को पार्टियां या प्रत्याशी विकृत करके पेश कर सकते हैं। समस्या पेड न्यूज से भी आगे की है क्योंकि अधिकांश दल बाजार की रिसर्च एजेंसियों से अपने लिए ओपीनियन पोल कराते हैं। कुछ एजेंसियां फेरबदल करके नतीजों को दे सकती हैं जिससे पार्टी को संभावित विजेता के रूप में पेश किया जा सके।

> **एक तरफ हमको संविधान के तहत अभिव्यक्ति की आजादी मिली है। दूसरी तरफ ऐसी पाबंदी है। ऐसे में हमको दूसरे देशों के अनुभवों को देखने की भी जरूरत है।**

कुल मिलाकर सही और फेरबदल वाले ओपीनियन पोल और एक्जिट पोल द्वारा वोटरों को प्रभावित करने की आशंका के चलते हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संतुलित करने और काले धन के बड़े इस्तेमाल को संतुलित करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके विरोधियों का कहना है कि वोटरों को प्रभावित करने के संबंध में कोई प्रमाण नहीं है।

इसका निर्धारण फिर किस प्रकार होगा? संविधान में अनुच्छेद 19(6) के तहत व्यवस्था की गई है कि व्यापक जन हितों के मद्देनजर मूल अधिकारों पर युक्तिसंगत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। क्या 'युक्तिसंगत प्रतिबंध' का सिद्धांत यहां एक्जिट पोल पर लागू होता है? यह साबित करना असंभव है कि एक्जिट पोल वोटरों को प्रभावित करता है या नहीं। इस अस्पष्ट स्थिति में वास्तव में दांव पर क्या है? वास्तविक लोकतंत्र के बुनियादी स्वरूप के तहत वोटरों को मुक्त एवं स्वतंत्र रूप से चुनाव करने का अधिकार है। कुछ दिनों या सप्ताह के लिए प्रेस की अभिव्यक्ति की आजादी पर प्रतिबंध लगाकर उस अधिकार का हनन किया जाता है? हमको यह ध्यान रखना चाहिए कि हम उसी वोटर की बात कर रहे हैं जो जाति, धर्म और धन, शराब और अन्य उपहारों से प्रभावित होता है। यदि ऐसा है तो ओपीनियन और एक्जिट पोल भी उन पर प्रभाव डाल सकता है। यह कुल मिलाकर महाभारत के 'धर्मसंकट' की स्थिति हैं जहां पर कोई निश्चय करना मुश्किल होता है। लेकिन उससे पहले फिलहाल चुनाव आयोग ने इन पर पाबंदी लगा रखी है। यदि कोई कानूनी रूप से इसे चुनौती देगा तो देखना होगा कि सुप्रीम कोर्ट क्या निर्णय देता है। तब तक तो हमको इस पाबंदी को स्वीकार करना होगा।